शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (669-674) April - June 2019

मानवाधिकार भारतीय संस्कृति की जड़ : आवश्यकता एवं सुरक्षा

डॉ० सुमन शर्मा
वरिष्ठ प्रवक्त्रा
इंस्टीट्यूट ऑफ टीचर एजुकेशन
कादराबाद, मोदीनगर (मेरठ)
Email : sharma.suman916@gmail.com

सारांश

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मानव को जन्म से प्राप्त हैं। अतः ये अदेय है। इसलिए राश्ट्र व राज्य द्वारा इन्हें छीना नहीं जा सकता परन्तु इनको शिक्षा के माध्यम से ही संरक्षित रखा जा सकता है।

मानव अधिकार के आधुनिक स्वरूप की शुरुआत सन् 1948 से मानी जाती है। जब–जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों की सार्वमौन घोषणा की थी। आमतौर पर माना जाता है कि 18वीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका (1776) एवं फ्रांस (1789) में घटी दो प्रमुख क्रान्तियों के बाद ही इस मानवाधिकार की चिन्ता विश्व समुदाय को सताने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद संघ के आर्थिक, सामाजिक परिषद ने इस दिशा में एक और कदम बढ़ाते हुए विश्व समुदाय द्वारा अपेक्षित मानव अधिकार आयोग की स्थापना कर दी। आयोग ने 10 दिसम्बर, 1948 को मानवाधिकार का एक घोषणा पत्र जारी किया। इसके बाद सन् 1950 में संघ ने यह घोषणा भी की कि अब प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाएगा। महाभारत में कहा गया है कि "न हि मानुशात् श्रेष्ठतरं हि किंचित" अर्थात मनुष्य से श्रेष्ठ इस संसार में कुछ भी नहीं है।

प्रस्तावना

मनुष्य इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मानववाद और मानवतावाद दोनों ही यह कहते हैं कि इस धरती को हर दृष्टि से खुशहाल और स्वर्ग जैसा बनाने की जिम्मेदारी मनुष्य के ऊपर है। ईश्वर जैसी किसी परिकल्पित सत्ता की नहीं। हम प्रायः मनुष्य जाति को उसके कर्त्तव्यों का तो स्मरण कराते रहते हैं परन्तु इनके अधिकारों के प्रति उदासीन बने रहते हैं। मानव अधिकार प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है, लेकिन समाज का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें जिस प्रकार की अराजकता है उसने चिंतकों के समक्ष एक गम्भीर प्रश्न खड़ा कर दिया है, मानव का अमानवीय हो जाना।

यदि हम मनुष्य के मूल–भूत अधिकारों की तन–मन–धन से रक्षा करेंगे तो वह इस संसार को सुन्दरतम् बनाने के लिए कर्त्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह अच्छी तरीके से कर पाएगा। सन् 1986 में परिवर्तित और घोषित राष्ट्रीय नीति का चतुर्थ खण्ड, "शैक्षिक अवसरों की समानता" नाम है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानवाधिकार से है। कहा जाता है कि लोकतंत्र मनुष्य के अधिकारों पर आधारित है परन्तु माना जाता है कि इसे मनुष्य के कर्त्तव्यों पर स्थिर रहना चाहिए। किन्तु अधिकार और कर्त्तव्य दोनों ही यूरोपीय धारणाएँ हैं। मानव अधिकारों की सार्वभौमिकरण घोषणा की प्रस्तावना में यह स्पष्टतः कहा गया है, "मानव अधिकार परिवार के सभी सदस्यों की सहज गरिमा तथा उनके समान एवं अपृथक्नीय अधिकारों की मान्यता ही विष्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शक्ति का आधार है।" संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों की घोषणा में कहा गया है कि, "प्रत्येक बालक को शिक्षा का सहज अधिकार होता है ताकि उसके विकास को सुनिश्चित कर उसकी व्यक्तिगत संभावनाओं को पूर्ण किया जा सके।" यहाँ मुझे एक उक्ति याद आ रही है–

"जागेगा इन्सान, जमाना देखेगा, उठेगा तूफान जमाना देखेगा।"

मानव अधिकारों की आवश्यकता

मानव अधिकार मनुष्य के मौलिक अधिकारों का ही एक रूप है। आज के बदलते परिवेश में मानव अधिकारों की गूँज जगह–जगह सुनाई पड़ती है। लेकिन मानवाधिकार कोई नई अवधारणा नहीं है। इसकी जड़े अतीत की गहराईयों में छिपी हुई हैं। इसके संरक्षण में 1689 में इंग्लैण्ड का बिल ऑफ राइट्स 1789 की फ्रांसिसी राज्य क्रान्ति के समय मौलिक अधिकारों की घोषणा तथा 10 दिसम्बर, 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा उद्घोषित मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा जैसे अनेक प्रयत्न होते रहे हैं। परन्तु जन साधारण के लिए मानवाधिकार मृग तृष्णा बने हुए हैं। सम्भवतः ऐसा इसलिए है क्योंकि आज भी एक आम आदमी अपने अधिकारों से अनभिज्ञ है। यहाँ यह पंक्ति सार्थक प्रतीत होती है–

"अंधेरे में जो बैठे हैं, जरा उन पर नजर डालो, अरे ओ रोशनी वालो।
बुरे इतने नहीं है, हम, जरा देखो, जरा भालो अरे ओ रोशनी वालो।।"

अतः आवश्यकता है आम नागरिक को इनके प्रति जागरूक करने की। ऐसी स्थिति में शिक्षा मानव अधिकार की जागरूकता लाने का एक सशक्त साधन बन सकती है। 1948 का मानवाधिकार घोषणा पत्र, तेहरान सम्मेलन 1968, वियना सम्मेलन 1995 ने भी मानवाधिकार शिक्षा पर बल दिया।

मानवाधिकार भारतीय संस्कृति की जड

भारत वर्ष में वेदों तथा उपनिषदों के समय से ही मानव को उच्च स्थान प्राप्त रहा है। सार्वभौम मानव अधिकारों की वास्तविक चिंतक परम्परा की जड़े यदि दुनिया में और जब तक कभी भी ढूँढी जाएगी तो वे भारत में ही मिलेगी। सर्वप्रथम मानवाधिकार की अवधारणा हमारे वैदिक मनीषियों ने वैदिक साहित्य के माध्यम से समाज के कल्याणार्थ मानवाधिकार विषयक चिन्तक व उसके अपरिहार्य तत्वों जिनमें, नैतिकता, सत्यता, कर्त्तव्य–निष्ठा एवं न्याय इत्यादि

शामिल हैं की व्याख्या प्रस्तुत की थी। ऋग्वेद में एक श्लोक में कहा गया कि सभी मानव संबद्ध हो, सभी वनस्पति एवं जीव–जन्तु जो सभी प्राणियों का आधार है। फले–फूले सभी पशुओं में परस्पर प्रेम हो और मनुष्यों में सद्भावना हो। हर तरफ शान्ति ही शान्ति हो। वास्तव में उक्त मानवाधिकारों की सार्वभौम और आयोग की स्थापना की प्रेरणा भूमि काफी पहले सन् 1525 में ही तैयार हो गई थी। जब जर्मन के किसान विद्रोह के दौरान वहाँ की सरकार द्वारा चलाई गई दमनकारी गतिविधियों को उजागर करने के लक्ष्य से "द टवेल्वथ आर्टिकल्स ऑफ द ब्लैक फॉरेस्ट नामक पुस्तक की रचना की गई। जर्मन सरकार की दमनकारी गतिविधियों की निन्दा ब्रिटिश बिल ऑफ राइट्स ने भी की थी। मानव अधिकारों के वर्तमान स्वरूप की स्थापना भारत में 26 सितम्बर, 1993 को हुई।

सन् 1948 में परिवर्तित और घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति का चतुर्थ खण्ड "शैक्षिक अवसरों की समानता" नाम से है। जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानव अधिकार से है। ये अधिकार हर व्यक्ति के होते हैं तथा बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्य इनका आनन्द लेते हैं। आज प्रत्येक राष्ट्र किन्हीं न किन्हीं जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, भाषा आदि से परे होकर सम्पूर्ण मानव जाति की एकता के सूत्र में बाँधकर सामाजिक न्याय के आधार पर विकासोन्मुखी बनाने के लिए आतुर है। सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक को मानव अधिकार प्राप्त हों और इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर मानवाधिकारों का स्त्रोत फूटा है। 'जियो और जीने दो।' ये मानव अधिकार हैं। विश्व स्तर पर मानव अधिकारों की स्थापना के मूल में जो सिद्धान्त क्रियाशील है उनमें से प्रमुख है– सभी व्यक्तियों की गरिमा को मान्यता, सांस्कृतिक भिन्नता को आधारभूत मानव–मूल्य मानना तथा सभी की मूलभूत समानता को सुनिश्चित करना।

मानव अधिकार एवं महिलाएँ

पूर्व आर्यन युग में महिलाएँ समान में अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि सिन्धु समाज मातृ सत्तात्मक था, जिसमें राज्य और सम्पत्ति का अधिकार कन्याओं को मिलता था। प्राचीन ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि स्त्री धन को यदि पति, पुत्र, माता या भाई बल पूर्वक ले लेता था तो ऐसी स्थिति में उन्हें ब्याज के साथ यह धन लौटाना पड़ता था। कार्यान्वयन स्मृति में एक विशेष नियम बनाया गया था कि जिसके अनुसार यदि पति स्त्री धन लेने की प्रतिज्ञा करे और से लौटाए बिना ही मर जाए तो पुत्र का यह कर्त्तव्य है कि वह उस धन को लौटाए। 1947 में देश की आजादी के बाद बने भारतीय संविधान में महिलाओं को भी पुरुषों की तरह ही एक समान अधिकार दिए गए हैं। भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों में महिलाओं के लिए सबसे प्रमुख है– समता का अधिकार।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मानव के जन्म से प्राप्त हैं। अतः ये अदेय है। इसलिए इन्हें राज्य व राष्ट्र के द्वारा छीना नहीं जा सकता परन्तु इनको शिक्षा के माध्यम से ही संरक्षित रखा जा सकता है। इसी सन्दर्भ में 3 अप्रैल, 2013 को भारत के माननीय राष्ट्रपति डॉ० प्रणव मुखर्जी ने नए दण्ड विधि अधिनियम, 2013 के तहत देह व्यापार से जुड़ी सभी प्रकार की गतिविधियों को दण्डनीय अपराध घोषित करते हुए नारी जगत से जुड़े मानवाधिकारों को संरक्षण

प्रदान करने की पहल की है।

उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्मित 30 अनुच्छेदों वाले मानव अधिकार चार्टर के पहले ही अनुच्छेद में यह कहा गया है कि सभी के साथ भाई–चारे का भाव रखना चाहिए। इसके अलावा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् सम्पूर्ण वसुधा (पृथ्वी) हमारे परिवार की भांति है जैसा महान सन्देश भी हमारे वैदिक साहित्य की देन है। इसी प्रकार राष्ट्र संघ द्वारा निर्मित चार्टर के अनुच्छेद छः में कहा गया है कि विष्व का प्रत्येक व्यक्ति सुखी हो। चार्टर के अनुच्छेद 28 में सभी को अपने ही समान समझने की सलाह दी गई है। भारतीय संस्कृति में 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' कहकर आज से हजारों वर्ष पहले सभी प्राणियों के लिए आत्मीय भाव रखने की सलाह देना उसी बात को प्रतिबिम्बित करता है।

यूनेस्को की मानवाधिकारों एवं प्रजातंत्र सम्बन्धी 'अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस' ने मार्च, 1993 में कहा, "मानवाधिकारों की शिक्षा स्वयं में एक महाधिकार है, जो सम्यक विकास, सभ्य समाज और लोकतंत्र की एक पुर्वाश्यकता है।" बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अनुच्छेद 23) में बताया, "मानसिक अथवा शारीरिक रूप से विकलांग बालक वैसी दशाओं में एक पूर्ण और सम्मानजनक जीवन का आनन्द ले सकता है। जो उसके महत्व को सुनिश्चित करता है, आत्म निर्भरता को बढ़ाते हैं तथा समुदाय में उसकी सक्रिय सहभागिता को बढ़ाते हैं।" विकलांग व्यक्ति अधिनियम 1995 के अनुसार, "विकलांगता से ग्रस्त उसे 18 वर्ष के प्रत्येक बालक की निःशुल्क शिक्षा एवं शैक्षिक उपकरणों तक पहुँच होनी चाहिए।"

यदि हम भारत के भिन्न योग्यता सम्पन्न बच्चों की शैक्षिक दशा पर नजर डालेंगे तो स्थिति बहुत सुखद नहीं है। यूनिसेफ के अनुसार, "भारत में 0–14 वर्ष की आयु के बीच लगभग 300 मिलियन बच्चे हैं। गैर–सरकारी सूत्रों के अनुसार इन बच्चों के लगभग 10% शैक्षिक आवश्यकताएँ विशिष्ट प्रकृति की हो सकती हैं। इस आधार पर भारत के लगभग 30 मिलियन बच्चे एक या अधिक प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त हैं। इनमें मात्र 3% से 4% को ही सामान्य अथवा विशिष्ट शिक्षा का लाभ मिल पाता है। शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों की एक बड़ी संख्या बिना विशेष सहायता के ही विद्यालय जाती है। सहायता सेवाओं के बिना इनमें कई बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं।

मानव अधिकारों की रक्षा

मानव अधिकार प्रत्येक मनुष्य के लिए परम् आवश्यक है, लेकिन समाज का जो वर्तमान स्वरूप है तथा उसमें जिस प्रकार की अराजकता है उसने चिन्तकों के समक्ष एक गम्भीर प्रश्न खड़ा कर दिया है। मानव के समक्ष सबसे बड़ा संकट है मानव का अमानवीय हो जाना। आमतौर पर देखा जाता है कि शहरों की अपेक्षा गाँवों में मानव अधिकारों का हनन अधिक होता है। ग्रामीण व्यक्तियों का गाँव में शोषण अधिक होता है। उनसे खेतों में 8–8 घण्टे काम कराया जाता है बन्धुआ मजदूरों के रूप में काम कराया जाता हैं साथ ही उचित वेतन भी नहीं दिया जाता। इसी आधार पर 14 वर्ष के बालकों से कार्य कराया जाता है, जो कि भारतीय संविधान में दिए मौलिक अधिकारों (मानव अधिकारों) के अनुसार कानूनी अपराध है। इसी कारण से 6–14 वर्ष के बच्चे

विद्यालय में दाखिला तो ले लेते हैं परन्तु अपनी पढ़ाई आर्थिक व सामाजिक किसी भी कारण से पूरी नहीं कर पाते। आए दिन नारी उत्पीड़न, दहेज उत्पीड़न आदि घटनाएँ देखने को मिलती हैं–

"हिन्दू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इन्सान की औलाद है इन्सान बनेगा।"

मानवाधिकार मनुष्य के मौलिक अधिकारों का ही एक विषयक रूप है। इन अधिकारों में जीने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार, स्वतन्त्रत चिन्तन का अधिकार, आगे बढ़ने के समान अवसरों का अधिकार इत्यादि अनेकानेक लोकतांत्रिक अधिकार सम्मिलित हैं। इन सभी अधिकारों की रक्षा हर सूरत में होनी चाहिए। इन अधिकारों की रक्षा का अर्थ है– मानव मात्र की रक्षा, मानवता की रक्षा और एक स्वस्थ प्रगतिशील विश्व की रक्षा। इसके अतिरिक्त पर्यावरण के प्रति अधिकार, शारीरिक विकलांगता के प्रति अधिकार कन्या भ्रूण हत्या के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार व नागरिकता का अधिकार आदि के प्रति हम निष्ठा पूर्वक काम करें और कराने के लिए आवाज उठाए तो स्वस्थ और निर्मल राष्ट्र का निर्माण अवश्य होगा।

मानवाधिकारों के प्रति सुझाव

मानवाधिकार शिक्षा की आवश्यकता समाज में किसी विशेष वर्ग या विशेष आयु वर्ग हेतु नहीं है अपितु सभी स्तरों पर मानवाधिकार शिक्षा दी जानी चाहिए। वास्तव में शिक्षा ही वह साधन है, जो मानव अधिकारों को सर्व साधारण तक पहुँचाकर उन्हें इसके प्रति जागरूक कर सकती है। साथ ही लोगों की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाकर मानवाधिकारों के सम्मान के प्रति, उनमें गहरी आस्था तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता जगा सकती है। इसलिए मानव अधिकारों को पाठ्यक्रम के सभी स्तरों पर लागू किया जाए। स्टोबर्ड (1957) एन०बी० टेरो द्वारा संपादित 'हयूमन राइट्स' एण्ड एजुकेशन' पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं, 'मानवाधिकार शिक्षा का लक्ष्य प्रजातंत्र, समानता, एकात्मकता, शान्ति, सम्मान और अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रत्ययों का अवबोध तथा उनके लिये सहानुभूति विकसित करना होना चाहिए।

माध्यमिक स्तर से हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में मानवाधिकार शिक्षा को अलग विषय के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर बाल ज्ञान के आधार पर इस विषय का ज्ञान कहानियों और कविताओं के आधार पर कराया जाए। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को अपने देश के सन्दर्भ में मानव अधिकारों और उसके संगठन के बारे में शिक्षा दी जाए। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार, उसका संगठन तथा वर्तमान क्रिया कलापों का अध्ययन कराया जाए। स्नातक स्तर पर इसे आधार पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए तथा मानवाधिकारों सम्बन्धी प्रश्नों के प्रश्न–पत्र में करना अनिवार्य कर दिया जाए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में मानवाधिकार का अध्ययन कराया जाए।

शिक्षकों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए सेमीनार व गोष्ठियों का आयोजन किया जाए। विद्यालयों में मानवाधिकारों से सम्बन्धित पत्र–पत्रिकाओं का संग्रह किया जाए। सामाजिक स्तर पर मानव अधिकार सम्बन्धी सभाओं, रेलियों का आयोजन बेनरों के साथ

किया जाए, ग्रामीण क्षेत्रों में इससे सम्बन्धित फिल्मों, नाटकों, नुक्कड़ नाटकों आदि का प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

सामान्य जनता को सूचित, वितरित करने हेतु रेडियो एवं दूरदर्शन पर विशिष्ट आवश्यकता के व्यक्तियों के लिए मानवाअधिकारों पर कार्यक्रम प्रसारित करना। विद्यालय की इमारत का निर्माण करते समय विकलांगों की कठिनाईयों का ध्यान रखना। आवश्यकता पड़ने पर भिन्न योग्यता के बच्चों के माता–पिता तथा समव्यस्कों को निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ प्रदान करना।

आइये हम सब आगे बढ़कर अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक बने और उनकी रक्षा के लिए उनके समर्थन में एक जुट होकर अपनी आवाज उठाएँ। अन्त में निम्न पंक्तियों के द्वारा एक सन्देश देना चाहूँगी–

"इन्सान का इन्सान से हो भाईचारा, यही पैगाम हमारा–2।"
खुद जियो ओरों को भी जीने दो, यही तो है जिन्दगी का रास्ता,
तुम्हें अमन का शान्ति का वास्ता।"

सन्दर्भ ग्रंथ

1. श्री अरविन्द– 16 मार्च, 1908, एसिपाटिक, डेमोक्रेसी, वन्देमातरम् (दैनिक)
2. श्री अरविन्द– *'ए प्रोफेस ऑन नेशनल एजुकेशन',* श्री अरविन्द एण्ड द मदर ऑन एजुकेशन (पांडिचेरी) श्री अरविन्द आश्रम, 2004, पृ० **14–15**
3. "नयी दिल्ली में 4 सितम्बर, 2006 को एक पुस्तक पर विमोचन के अवसर पर बोलते हुए।"
4. लाल, शर्मा– *"द व्हाइट मैन्लबर्डेन",* ए हडरेड एन काउंटर्स नयी दिल्ली, रूप 2003, पृ० **206**
5. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* जनवरी, 2004, पृ० **36.37**
6. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* जनवरी, 2005 पृ० **42–43**
7. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* जनवरी, 2006 पृ० **22–23**
8. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* जनवरी, 2013 पृ० **27–28**
9. *प्राइमरी शिक्षक अक्टूबर,* 2002, पृ० **24–26**